रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

घट मार्ग

लेखक :

परमसन्त डा० श्री कृष्णलाल जी महाराज

आचार्य रामाश्रम सत्संग, (गाज़ियाबाद, उ०प्र०)

रामाश्रम सत्संग (रजि०),

ग़ज़ियाबाद (उ० प्र०)

प्रकाशक :

आचार्य , रामाश्रम सत्संग, सिकन्द्राबाद (उ० प्र०)

मुद्रक तथा प्रकाशक

विवेक मुद्रणालय,

जी०टी० रोड , गाज़ियाबाद

फोन: ३२७०,२९०३

डिजिटल संस्करण - (२०१९)

डॉ० शक्ति कुमार जी

आचार्य / अध्यक्ष, रामाश्रम सत्संग, (रजि.)

ग़ाज़ियाबाद (उ० प्र०)

विषय – सूची

१) दो शब्द

२) परिचय

३) शब्द कबीर साहब

४) व्याख्या

५) चेतावनी

दो शब्द

मेरे गुरुदेव, परम सन्त महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज (सिकंदराबाद, उ० प्र० निवासी) आधुनिक युग में एक बड़ी उच्च कोटि के सूफी सन्त हुए है । वे राजयोग में महान अनुभवी महापुरुष थे । चक्रवेधन विद्या में पारंगत होने के कारण उन्होंने कबीर जी की वाणी की व्याख्या उन जिज्ञासुओं के लाभ हेतु की है जो इस मार्ग पर चल रहे है । यह ब्रह्म विद्या के रास्ते का भेद है जो मौखिक है और जिससे जिज्ञासु को मार्ग प्रदर्शन किसी वक्त के पुरे संत से ही मिलेगा जैसा कि उन्होंने इस पुस्तक के अंत में कहा है ।

इस घट मार्ग को उनहोंने अपने जीवन काल में सन १९६८-६९ में एक सेवक को लिख दिया था । अब तक उनके अन्य प्रकाशन धीरे-धीरे छपवा कर प्रेमी भाइयों के लिए प्रस्तुत किये जा चुके हैं । मुझे पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक जिज्ञासुओं के लिए सच्चा मार्ग प्रदर्शन करेगी और प्रेमी भाई इससे आध्यात्मिक लाभ उठाएंगे ।

दास ----

करतार सिंह

रामनवमी, २९ मार्च १९७७

आचार्य, रामाश्रम सत्संग

गाज़ियाबाद ।

एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम। जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वह कैसे भी हैं, 'उन्हें' मैं प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका। वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिये प्रस्तुत हूँ।

-- परमसन्त **डॉ. श्रीकृष्णलाल जी महाराज**

सिकन्द्राबाद , उ०प्र०

(जन्म १५-१०-१८९४ - निर्वाण १८-५-१९७०)

परिचय

संत सद गुरु कबीर साहब की वाणी अत्यंत गुढ है । साधारण मनुष्य की बुद्धि उसका वास्तविक अर्थ समझने में असमर्थ हैं । उनके शब्दों के वास्तविक अर्थ को या तो कोई ईश्वर का प्यारा संत समझ जा सकता है या कुछ कुछ वे लोग समझ सकते हैं जो संतों की सोहबत (संगत) उठाए हुए हैं और परमार्थ के रास्ते पर चल रहे हैं । देखने में तो कबीर साहब के शब्द बड़े अटपटे से प्रतीत होते हैं और ऐसा लगता है कि यह निरी तुकबंदी है । किन्तु यह कहना नादानी है । उन्होंने जो कुछ लिखा है आत्म अनुभव के द्वारा लिखा है और वह अक्षरश: सत्य है । उनके अनेकों शब्दों में पिंड ब्रह्मांड आदि का वर्णन कई कई ढंग से मिलता है । कहावत है कि "ब्रह्मांडे सो पिंडे" यानी जैसी रचना ब्रह्मांड की है, लगभग वैसी हीं पिंड की है । जिसे शरीर कहते हैं । परमपिता परमात्मा जो सारे ब्रह्मांडो का मालिक है, वह केवल मनुष्य शरीर में ही प्राप्त किया जा सकता है । आत्मा, जिससे मनुष्य शरीर जीवित और संचालित है, जो शरीर की जान है, उसी परमात्मा का अंश है, किन्तु अज्ञान में फंसकर यह अपने अंशी परमात्मा को भूल गई है । जब इसको अपने सच्चे मालिक की सूरत होती है तो यह उसी में मिल कर एक हो जाना चाहती हैं । किन्तु वह स्वयं महान शक्तिशाली होते हुए मन और माया के फेर में पड़कर निर्बल हो गई है और अपने आप उसमें इतना सामर्थ्य नहीं रही कि अपने प्रीतम के चरणों में जा मिले । मन और इंद्रियों के वशीभूत हो रही है । संतो ने उसके निकलने की युक्ति बताइ है और वह रास्ता भी बताया है जिसके द्वारा आत्मा अपने असली वतन यानी सच्चे मालिक के चरणों में लौट सकती है । इस रास्ते को वर्णन अनुभवी संतों ने अपने शब्दों में भिन्न भिन्न प्रकार से किया है । मिलान करने पर यह मालूम हो जाता है कि प्रत्येक महापुरुष ने बात एक ही कही है, कहने का ढंग भले हीं अलग अलग हो ।

कबीर साहब ने अपने अनेक शब्दों तथा सखियों में मालिक से मिलने की युक्ति तथा वह रास्ता जिससे आत्मा लौटकर मालिक के चरणों में जा मिलती हैं, बताया है । आत्मा जब पिंड (शरीर) में उतरी तो सिर की चोटी से नीचे तक उतरते उतरते अठारह स्थानों पर अपने ठिकाने बनाएं । उन ठिकानों को संतो की भाषा में चक्र कहते हैं । इन चक्रों के नाम क्रमश: इस

प्रकार है -

परमपिता परमेश्वर

(सत्पुरुष-दयालु, मालिके-कुल)

ब्रह्मांड के छः चक्र

१.
२. पहले ३ च गुक्रप्त है
३.
४. अनामी
५. अगम
६. अलख

अंड के छः चक्र

७. सत खंड
८. भँवर गुफा
९. महा सुन्न
१०. सुन्न
११. त्रिकुटी
१२. सहस्र दल कंवल

पिंड के छः चक्र

१३. आज्ञा चक्र
१४. कंठ चक्र
१५. हृदय चक्र
१६. नाभि चक्र
१७. इंद्री चक्र
१८ गुदा चक्र

चक्रों का क्रम निचे से उपर की ओर--->

	१८
	१७
	१६
	१५
	१४
	१३
	१२
	११
	१०
	९
	८
	७
	६
	५
	४
	३
	२
	१.

।

यह अठारहों चक्र छह छह की श्रेणी में क्रमश: 'ब्रह्मांड', 'अंड' और 'पिंड' के अंतर्गत आते हैं । इन सब के ऊपर परम पिता परमेश्वर (मालिके के कुल) है । जब आत्मा पलटकर अपने धाम को जाती है तब इन्हीं चक्रों या ठेकों से होकर लौटती हैं । प्रत्येक ठेके का एक एक अधिष्ठाता या देवता है और उसकी अलग अलग विशेषता है, जैसे गुदा चक्र के अधिष्ठाता गणेश जी है इंद्री चक्र के अधिष्ठाता ब्रह्मा जी है जो रचना करते हैं,नाभि चक्र के अधिष्ठाता विष्णु भगवान हैं जो पालन पोषण करते हैं, इत्यादि । प्रत्येक चक्र पर एक शब्द (vibration) हो रहा है और उस शब्द रूप अलग अलग हैं । इन सबका वर्णन विस्तार पूर्वक कबीर साहब ने अपने शब्द में किया है "कर नैनो दीदार महल में प्यारा है" जिसकी व्याख्या इस छोटी सी पुस्तक में दी हुई है ।

यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि नीचे के तीन चक्रों (यानि गुदा, इंद्री, नाभि) को साधने में ही योगियों ने अपनी सारी आयु गंवा दी । यह तीन चक्र ऐसे हैं मानो सूर्य का अक्स पानी में पड़ रहा हो और पानी का अक्स दीवार पर पड़ रहा हो । असली वस्तु सूर्य है न कि बिम्ब का प्रतिबिंब । कबीर साहब तथा अन्य संतों ने इन तीन चक्रों का अभ्यास छुड़वा दिया है । उनका अभ्यास हृदय चक्र या आज्ञा चक्र से शुरू होता है,(जैसा अधिकारी हो) । इसका यह मतलब है कि उनको नीचे के चक्रों का ज्ञान नहीं है । नीचे के तीन चक्रों को देश काल और परिस्थितियों के अनुसार छुड़वा दिया है । ना आजकल के मनुष्यों की तंदुरुस्ती उन चक्रों को साधने योग्य हैं न किसी के पास इतना समय है और न इस क्रिया के अच्छे जानने वाले हैं । संतों का कहना है कि हृदय चक्र या उससे ऊपर के चक्रों को साधने से नीचे के चक्र स्वयं सध जाते हैं । इसके अलावा एक बात यह भी है कि नीचे के उपरोक्त चक्रों का साधना हठ योग के अंतर्गत आता है । संतों का मार्ग हठयोग का नहीं है, उनका रास्ता प्रेम का रास्ता है और प्रेम में हठ नहीं होता, दीनता आग्रह और समर्पण होता है । --आसी

श्रीकृष्ण लाल

शब्द कबीर साहब

कर नैनो दीदार महल में प्यारा है ॥टेक॥
काम क्रोध मद लोभ बिसारो,
सील संतोष क्षमा चित् धारों ।
मद्य मांस मिथ्या ताज डारो,
हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है । १ । कर नैनों०

धोती नेती वस्ती पाओ,
आसन पद्म जुक्ति से लाओ ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ,
पहिले मूल सुधार, कारज हो सारा है । २ । कर नैनो०

मूल कंवल दल चतुर बखानो,
कलिंग जाप लाल रंग मानो ।
देव गणेश तँह रूपा थानों,
ऋद्ध सिध चँवर दुलारा है । ३ । कर नैनो०

स्वाद चक्र षट दल विसतारो,
बृहम सावित्री रूप निहारो ।
उलट नागिनी का सिर मारो,
तहाँ शब्द ओंकारा हैं । ४ । कर नैनो०

नाभि अष्ट कंवल दल साजा,
सेत सिंहासन विष्णु विराजा ।
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा,
लक्ष्मी शिव अधारा है । ।५। कर नैनो०

द्वादस कंवल हृदय के माही,
जहँ गौरी शिव ध्यान लगाई ।
सोहं शब्द तहाँ धुन छाई,
गण करै जै - जै - कारा है । ६ । कर नैनो०

मूल = गुदा चक्र । ब्रहम = ब्रहमा । स्वाद चक्र = इंद्री चक्र ।

षोडश कंवल कंठ के माहीं ,
तेहिं मध्य बसे अविद्या बाई ।
हरि हर बृह्मा चँवर ढुराई,
जहँ श्रयं नाम उच्चारा है । ७ । कर नैनो०

ता पर कंज कँवल हैं भाई,
बग भौरा' दुइ रूप लखाई ।
निज मन करत तहाँ ठकुराई,
सो नैंनन पिछवारा है । ८ । कर नैनो०

कँवलन भेद किया निर्वारा,
यह सब रचन पिंड मंझारा ।
सत्संग कर सतगुरु सिर धारा
कह सतनाम उचारा है । ९ । कर नैनो०

आँख कान मुख बंद कराओ,
अनहद झींगा शब्द सुनाओ ।
दोनों तिल एक तार मिलाओ,
तब देखो गुलजारा है । १० । कर नैनो०

चंद सूर एकै घर लाओ,
सुषमन सेती ध्यान लगाओ ।
त्रिबेनी के संध[१] समाओ,
भोर उतर चल पारा है । ११ । कर नैनो०

घंटा संख सुनो धुन दोई,
सहस कंवल दल जगमग होई ।
ता मध्य करता निरखो सोई,
बंकनाल धस पारा है । १२ । कर नैनो०

डाँकनी साँकनी बहु किलकारे,
जम किंकर धर्म दूत हंकारे ।
सत् नाम सुन भागे सारे,
जब सतगुरु नाम ऊंचारा है । १३ । कर नैनो०

बकुला और भौरा अर्थात श्वेत श्याम पद । संध = संगम

गगन मंडल बिच ऊर्धमुख कुइया,
गुरु मुख साधू भर भर पिया ।
निगुरु प्यास मरें बिन क्रिया[१] ,
जाके हिये अंधियारा है । १४ । कर नैनो०

त्रिकुटी महल में विद्या सारा,
घनहर[२] गरजें बजे नगारा ।
लाल वर्ण सूरज उजियारा
चतुर कंवल मंझार शब्द ओंकारा हैं । १५ । कर नैनो०

साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा,
नौ दरवाजे प्रगट चीन्हा ।
दसवां खोल जाये जिन दीन्हा,
जहां कुफल[३] रहा मारा है । १६ । कर नैनो०

आगे सेत सुन्न हैं भाई भाई,
मान सरोवर पैठी अन्हाई ।
हंसन मिल हंसा होई जाई,
मिलै जो अमी अहारा है । १७ । कर नैनो०

किंगरी सारंग बजै सितारा,
अक्षर ब्रह्म सुन्न दरबारा ।
द्वादस भानु हंस उजियारा,
षट दल कंवल मंझार शब्द ररंकारा है । १८ । कर नैनो०

महा सुन्न सिन्ध विषमी घाटी,
बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी ।
ब्याधर[४] सिंह सर्प बहु काटी,
तहं सहज अचिंत पसारा है । १९ । कर नैनो०

क्रिया = करनी । घनहर = बादल । कुफल = ताला । ब्याधर = बाघ

अष्टदल कंवल पार ब्रह्म भाई,
दहिने द्वादश अचिंत रहाई ।
बायें दस दल सहज समाई,
यों कंवलन निरवारा है । २० । कर नैनो०

पांच ब्रह्म पांचों अंड बीनो,
पांच ब्रह्म नि:अक्षरचीन्हो ।
चार मुकाम गुप्त तहं कीन्हो,
जा मध्य बंदीवान पुरुष दरबारा है । २१ । कर नैनो०

दो पर्वत की सन्धि निहारो,
भंवर गुफा वहँ संत पुकारो ।
हंसा करते केल अपारो,
तहाँ गुरन दरबारा है । २२ । कर नैनो०

सहस अठासी दीप रचाए,
हीरे पन्ने लाल जुड़ाए ।
मुरली बसत अखंड सदाये,
तहं सोहं झनकारा है । २३ । कर नैनो०

सोहं हद्द तजी जब भाई,
सत्त लोक की हद्द पुनि आई ।
उठत सुगंध महा अधिकाई,
जा को वार न पारा है । २४ । कर नैनो०

षोडस भानु हंस के रूपा,
बीना सत धुन बजै अनुपा ।
हंसा करत चँवर सिर भूपा,
सत्त - पुरुष दरबारा है । २५ । कर नैनो०

कोटिन भानु उदय जो होई,
ऐते ही पुनि चन्द्र लखोई ।
पुरुष रोम सम एक न होई,
ऐसा पुरुष दीदारा है । २६ । कर नैनो०

आगे अलख लोक है भाई,
अलख पुरुष की तहं ठकुराई ।
अरबन सूर रोम सम नाहिं,
ऐसा अलख निहारा है । २७ । कर नैनो०

ता पर अगम महल एक साजा,
अगम पुरुष ताहि का राजा ।
खरगन सूर रोम इक लाजा,
ऐसा अगम अपारा है । २८ । कर नैनो०

ता पर अकह लोक है भाई
पुरुष अनामी त हाँ रहाई ।
जो पहुंचे जानेगा वाही
कहन सुनन से न्यारा है । २९ । कर नैनो०

काया भेद किया निर्वारा,
यह सब रचना पिंड मंझारा ।
मावा अवगति जाल पसारा,
सो कारीगर भारा है । ३० । कर नैनो०

आदि माया किन्हीं चतुराई,
झूँठी बाजी पिंड दिखाई ।
अवगति रचना रची अंड माहीं
ता का प्रतिबिम्ब डारा । ३१ । कर नैनो०

शब्द विहंगम चाल हमारी,
कहे कबीर सतगुरु दई तारी ।
खुले कपाट शब्द झनकारी,
पिंड अंड के पार सो देस हमारा है । ३२ । कर नैनो०

व्याख्या

अब प्रत्येक कड़ी का अर्थ यहां दिया जाता है । कबीर साहब योगियों के अभ्यास की विधि बतलाते हैं ।

टेक - कर नैनो दीदार महल में प्यारा है ।

मनुष्य का शरीर परमात्मा के रहने का महल है । इसमें परमात्मा की अंश आत्मा रहती है । आत्मा स्त्री रूप है और परमात्मा पुरुष रूप में उसका प्यारा पति है । यह दोनों स्त्री और पुरुष एक ही महल में रहते हैं किन्तु मिलाप नहीं होता । कबीर साहब से चेताते हैं कि अपने अंतर के नेत्रों के द्वारा अपने सच्चे मालिक का दीदार (दर्शन), इस मनुष्य शरीर में करो । नीचे की कड़ियों में यह बताया गया है कि दर्शन करने के लिए कौन सी युक्ति प्रयोग में लाओ ।

कड़ी नं० - १ -- काम क्रोध मद लोभ बिसारो,
सील संतोष क्षमा चित् धारों ।
मद्य मांस मिथ्या ताज डारो,
हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है । १ । कर नैनों

सबसे पहले 'काम' का त्याग करो । काम का यहां सीधा-सादा अर्थ मनुष्य के विषय भोग की वासना से है । वैसे तो 'काम' का अर्थ काफी व्यापक है परंतु कबीर साहब का आशय यह है कि विषय भोग से ऊपर उठो, अपनी स्त्री के सिवाय और स्त्रियों को मलिन दृष्टि सेमत देखो । इसी प्रकार स्त्री वर्ग को चाहिए कि अपने पति के अलावा किसी दूसरे मनुष्य को मलीन भाव से न देखें । काम मनुष्य को नीचे गिराता है और जिसकी रूचि काम की ओर है, वह 'नाम' को स्थिरता से नहीं पकड़ सकता । 'नाम' ही साधक को परमात्मा की राह पर चलाता है । कामी का हृदय मलिन होता है अतः पहले उसे निर्मल बनाओ । इसी प्रकार क्रोध का त्याग करो । काम में मनुष्य की सूरत (Attention) का प्रवाह नीचे की ओर होता है और क्रोध उसे नीचे फैलाने में सहायक होता है । अहंकार आत्मा को ऊंचे मंडलों में जाने से रोकता है । मनुष्य में कितने भी अच्छे गुण क्यों न हो, यदि वह लोभी और लालची है तो संसार उससे घृणा करने लगता है । उसका ध्यान संसार की वस्तुओं के लोभ लालच में ही लगा रहता है । जब कोई वस्तु, जिसे वह प्राप्त करना चाहता है, मिल जाती है तो उससे मोह हो जाता है और उसे वह अपनी कहने लगता है और इस प्रकार अपने आप को बंधन में बांध लेता है । जब तक बंधनों

से मुक्त नहीं होगा तब तक आत्मा वहीं फंसी रहेगी और ऊपर को नहीं लौट सकेगी । इन सब को छोड़ना पड़ेगा । काम की जगह शील, क्रोध की जगह क्षमा, लोभ की जगह संतोष, मोह की जगह विवेक और अहंकार की जगह दीनता को स्थान दो । ऐसे भोजन जो उपरोक्त विकारों को पैदा करते हैं, जैसे शराब, मांस आदि उन्हें छोड़ दो और झूठ बोलना बंद कर दो । जब इतना हो जाएगा तो भ्रम टूटने लगेगा और अंतर में चाल चलने की समझ आना शुरू हो जाएगी ।

कड़ी नं० - २ -- धोती नेती वस्ती पाओ,
आसन पद्म जुक्ति से लाओ ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ,
पहिले मूल सुधार, कारज हो सारा है ॥

कबीर साहब योगियों की उपासना की विधि बतलाते हुए आगे कहते हैं कि शरीर के भीतर व बाहर से सफाई आवश्यक है, इसलिए पूजा से पहले स्नान करके शरीर के बाहर की गंदगी दूर करते हैं । पहले का साधन यह रहा है (जिसका आजकल के संतों ने त्याग कर दिया है) कि तीन अंगुल चौड़ा मलमल का या बारीक कपडा पानी से भिगोकर निगल जाते थे और अपने आमाशय (Stomach) को साफ करते थे । इसी तरह मलांत्र (Rectum) को साफ करने की विधि को वस्ति कहते हैं जो एक प्रकार का अनिमा (Anema) है । मलान्त्र से पानी चढ़ा कर उसको साफ करते हैं । नेति में एक रेशम की डोरी लेकर उस पार मोम लगाकर नाक के एक छेद में डाल कर दूसरे में से निकाल देते थे । इस क्रिया में सांस के आने जाने में आसानी होती है । अमाशय और मलान्त्र साफ करने से तबियत हलकी रहती है । उसके बाद पद्मासन लगाकर बैठते है और प्राणायाम का अभ्यास करते है । पहले कुंभक (यानी सांस को अंदर खींचना) फिर पूरक (यानि सांस को अपने अंदर रोकना) और उसके बाद रेचक (यानी सांस को बाहर निकाल देना) का अभ्यास करते-करते कई घंटों तक बढ़ाते हैं जिसके द्वारा मूलाधार जिसे गुदा चक्र भी कहते हैं और जो चक्रों में सबसे नीचे का चक्र है, सधता है । यह साधन वर्तमान संतों ने छोड़ दिया है क्योंकि इसके लिए तंदुरस्ती अच्छी चाहिए और समय भी काफी चाहिए, जो आजकल प्रत्येक साधक को उपलब्ध नहीं है ।

कड़ी नं० - ३ -- मूल कंवल दल चतुर बखानो,
कलिंग जाप लाल रंग मानो ।
देव गणेश तँह रूपा थानों,
ऋद्ध सिध चँवर दुलारा है ॥

कबीर साहब कहते हैं कि चतुर मनुष्य ने ऐसा कहा है कि मूल-चक्र, गुदा-चक्र है । इस चक्र के अधिष्ठाता गणेश जी हैं जिसका रंग लाल है । पंडित लोग प्रत्येक पूजा में सबसे पहले गणेश जी का आह्वान करते हैं क्योंकि गणेश जी को कर्म का अधिष्ठाता माना गया है । योगी लोग भी गणेश जी का स्थान गुदा-चक्र को सबसे पहले साधते हैं और अपनी सूरत (Attention) को गुदा के स्थान पर जमा कर 'कलिंग' शब्द का जाप करते हैं । यह जाप कई कई बार हजार या कई कई लाख बार करते हैं और इस तरह की बिखरी हुई सूरत की धारों को एकत्रित करते हैं । गुदा चक्र चार दल का कमल है । इस चक्र के साधने का यह परिणाम होता है कि साधक की संकल्प शक्ति (Will Power) दृढ हो जाती है, संसार का जो काम करता है उसमें उसे सफलता मिलती हैं और सिद्धि शक्ति प्राप्त होती है । गुदा चक्र में पृथ्वी का तत्व प्रधान है । जो मल निकलता है वह 'मिट्टी' हो जाता है । गणेश जी की मूर्ति स्थान पर मिट्टी का ढेला रखकर भी पूजा कर लेते हैं ।

कड़ी नं० - ४ -- स्वाद चक्र षट दल विसतारो,
बृह्म सावित्री रूप निहारो ।
उलट नागिनी का सिर मारो,
तहाँ शब्द ओंकारा हैं ॥

योगी जन जब गुदगुदा चक्र को सिर कर सकते हैं तब उससे ऊपर स्थान इंद्री चक्र को साधते हैं इस चक्र का दूसरा नाम स्वाद चक्र भी है इसका तत्व जल है यायह ब्रह्मा जी का स्थान है और संसारी को पति का मूल है इस चक्र को सिद्ध करने के कई उपाय योगीजन अपनाते हैं कोई इसके द्वारा पानी को ऊपर खींच लेते हैं और अभ्यास करते करते पानी पारे को भी ऊपर कीखींच लेते हैं और अभ्यास करते करते पारे को भी ऊपर खींचने लगते हैं इसको सिद्ध करने से ब्रह्मचर्य सत्ता इंद्री और नाभि के बीच का स्थान पर एक नारी है जिसको खोलने नहीं करते हैं गर्दन के से लेकर तुमची तकरीर की हड्डी के भीतर एक नारी होती है जिसे अंग्रेजी में और संतों की भाषा में सुशुमना नाडी कहते हैं इसकी शक्ल अर्धगोलाकार होती है और कुछ कुछ कुंडली मार कर बैठे हुए साहब की हालत में मिलती जुलती है इसीलिए इसको कुंडलिनी भी कहते हैं इस गाड़ी में होकर जीवन का संचार बहुत छोटी छोटी नाड़ियों द्वारामनुष्य के ब्रह्मरंध्र से लेकर नीचे की ओर सारे शरीर में होता है यही तो सूरज के नीचे कर प्रभाकर होते हैं योगी जानी सी सुशुमना नाडी के द्वारा अपनी सूरत की धार को उलट कर ऊपर ले जाते हैं इस क्रिया कोकोल्ड रेनी का जागरण कहते हैं जगाना भी कहते हैं कभी सब

कहते हैं कि योगी जैनपुर लेनी को जागृत करने के लिए हिंदी चक्र पर ध्यान जमा कर ॐ शब्द का जाप करते हैं

कड़ी नं० - ५ -- नाभी अष्ट कंवल दल साजा,
सेत सिंहासन विष्णु विराजा ।
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा,
लक्ष्मी शिव अधारा है ॥

इंद्री चक्र से ऊपर का जो चक्र है वह नाभि के स्थान पर है और उसे नाभि चक्र कहते हैं । यहां आठ दलों का कंवल है । कंवल से अभिप्राय Nervous Centre (स्नायु केंद्र) से है यानी यहां पर आठ नाड़ियाँ आकर मिलती है । पेट, भोजन को पचाता है और सारे शरीर का पालन-पोषण करता है । यह स्थान विष्णु भगवान का है जो सारी सृष्टि का पालन करते हैं । विष्णु भगवान से शैय्या यानि शेषनाग की कुंडली पर विराजमान है । मनुष्य की नाभि, आँतों की कुंडली के ऊपर स्थित है, इसलिए इसी का रूपक विष्णु भगवान की तस्वीर में दृष्टिगोचर होता है । इस स्थान पर जो प्रकाश हो रहा है उसका रंग सफेद (श्वेत=सेत) है । योगीजन इस स्थान को शुद्ध करने के लिए 'हिरिंग' शब्द का जाप करते हैं । इस स्थान को इससे उपर वाले चक्र (हृदय चक्र) से शक्ति मिलती है जिसके अधिष्ठाता शिव भगवान है और उस शक्ति के आधार पर नाभि चक्र की शक्ति लक्ष्मी (जो विष्णु भगवान की अर्धांगिनी है), यहाँ का काम चलाती हैं ।

कड़ी नं० - ६ -- द्वादस कंवल हृदय के माही,
जहँ गौरी शिव ध्यान लगाई ।
सोहं शब्द तहाँ धुन छाई,
गण करै जै - जै - कारा है ॥

पिंड शरीर में नीचे से ऊपर को चौथा चक्र 'हृदय चक्र' है जहां का रंग सफेद है । जहां पर आदमी का दिल होता है वहीं पर जो Cordial Plexus (हृदय में एक प्रकार का तंतुओं का जाल) है उसी का नाम हृदय चक्र है । इसको द्वादश-दल-कंवल यानि बारह दल का कंवल भी कहते हैं । इस चक्र में अधिष्ठाता शिव भगवान हैं । मनुष्य अपनी इच्छाएं दिल से ही उठाता है और उन्हीं के कारण परेशान होता है । शिव भगवान के शरीर पर भभूत, सांप, बिच्छू, काँतर

आदि लिपटे रहते हैं परन्तु यह विषैले जीव जंतु उनका कुछ बिगाड नहीं करते । मनुष्य का दिल भी इच्छाओं से घिरा हुआ है और प्रत्येक इच्छा विषैले जीव जंतुओं से कम नहीं है । जब आदमी अपनी इच्छाओं पर विजय पा लेता है तब वे उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाती । शिव भगवान का रूपक यही दिखाता है कि सारी इच्छाएं जलाकर कर भस्म कर दी हैं और वही भस्म शरीर में लपेट रखी है । अब वह उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती । साँप आदि सब जंतु इच्छाओं के रुपक हैं, जो स्वतः शरीर पर घूमते रहते हैं लेकिन बिगाड़ कुछ नहीं सकते । शिव भगवान शांत बैठे हैं यानि मन ने उछल कूद बंद कर दी है । उनकी सवारी सफेद बैल है जो सतोगुणी मन का रूप है । वह उनके सामने शांत होकर बैठा रहता है और जब चाहे वे उस पर सवारी कर सकते हैं । इस चक्र पर 'सोहं' शब्द का जाप करते हैं । जब यह चक्र सिद्ध हो जाती है तो इन्द्रियाँ वश में हो जाती है । गण जो शिव जी की सेना है वह जै - जै कार करने लगते है अर्थात मनुष्य की इन्द्रियाँ उसके पूरी तरह अधीन हो जाती हैं ।

पशुओं में गुदा, इंद्री और नाभि यह तीन ही चक्र होते हैं । इनसे ऊपर के चक्र यानी हृदय, कंठ आदि उनमें नहीं होते । इसलिए उनमें सोच विचार की शक्ति और मनुष्य जैसी चतुराई नहीं होती । उपरोक्त ३ चक्रों द्वारा ही वे अपना सांसारिक जीवन व्यतीत करते हैं । जैसे पेट भर लेना (नाभि चक्र), इंद्रिय भोग कर लेना (इन्द्री चक्र) और आलस में पड़े रहना (गुदा चक्र) इसी प्रकार क्रमश: क्रोध, मैथुन और निंद्रा इन तीन चक्रों का काम है । जब मनुष्य इन तीन चक्रों में फंसा रहता है तब वह भी पशुवत होता है । जब इनसे ऊंचा उठ कर हृदय के स्थान पर आता है तब मनुष्य स्वभाव में व्यवहार करता है । हृदय चक्र, शिव जी का स्थान है और चूंकि यह चक्र नीचे के तीनों पशु योनी वाले चक्कर से ऊपर है और वह उन पर शासन करता है अतः इस चक्र के अधिष्ठाता शिव भगवान को पशुपतिनाथ भी कहते है ।

नीचे के तीन चक्रों में पशु श्रेणी है । कच्छ, मच्छ, और वाराह अवतार इन्हीं तीन चक्रों से संबंध रखते हैं और शक्ल सूरत में भी जानवर ही थे । इनके ऊपर चौथे चक्र यानी हृदय चक्र पर पशुपति रूप शिव की शक्ति है । पशुओं को इस चक्र पर आने की जरूरत ही नहीं होती । वे इसे पहले ही मर जाते हैं ।

कड़ी नं० - ७ -- षोडश कंवल कंठ के माहीं ,
तेहिं मध्य बसे अविद्या बाई ।
हरि हर बृहमा चँवर ढुराई,
जहँ श्रयं नाम उच्चारा है ॥

पांचवां चक्र कंठ चक्र कहलाता है, जिसका स्थान मनुष्य के कंठ में होता है । इसको षोंडश दल कमल या सोलह दल का कमल भी कहते हैं । इस चक्र के अधिष्ठाता अविद्या शक्ति हैं जिसे 'देवी' कहते हैं । इस स्थान पर रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता है जो कि नीचे के चक्रों में अपने स्वभाव के अनुसार प्रवाहित हो रही है । जब हृदय चक्र में अपना प्रभाव पहुंचाती है तब रजोगुणी अवस्था यानि कभी अच्छाई और कभी बुराई की ओर मन को ले जाती है । जब यह शक्ति नाभी इंद्री और गुदा चक्र की ओर प्रवाहित होती है तब तामसिक गुणों का वेग होता है, जैसे - क्रोध, खाने-पीने की, विषय भोग की, और आलस्य की इच्छा का पैदा होना ।

माया के दो रूप हैं, एक शुद्ध माया और दूसरे मलीन माया जिन्हें क्रमश: विद्या और अविद्या भी कहते हैं । शुद्ध माया छठे चक्र यानी आज्ञा चक्र से ऊपर आरंभ होती है और मलीन माया कंठ चक्र पर बैठकर त्रिगुणात्मक शक्तियों को संचालित करती है । त्रिगुणात्मक शक्तियां हैं (१) ब्रहमा (उत्पन्न करने वाले) (२) विष्णु (जिन्हें 'हरि' भी कहते हैं) पालन पोषण करने वाले और (३) शिव (जिन्हें 'हर' भी कहते हैं) हरने वाले या संहार करने वाले । यही तीनों शक्तियाँ सृष्टि की उत्पत्ति पालन और संहार करती है । इन तीनों शक्तियों का आधार यही मलीन माया या अविद्या शक्ति है, जिसके अधीनता में यह शक्तियां काम करती हैं । योगी जन इस चक्र पर ध्यान जमा कर 'श्री' शब्द का जाप करते हैं ।

कड़ी नं० - ८ -- ता पर कंज कँवल हैं भाई,
बग भौरा' दुइ रूप लखाई ।
निज मन करत तहाँ ठकुराई,
सो नैंनन पिछवारा है ॥

आंखों के से ऊपर दोनों भौहों के बीच में एक एक इंच अंदर की तरफ जो चक्र है वह 'आज्ञा चक्र' कहलाता है । इसे दो दल-कँवल भी कहते हैं अर्थात यहां से दो धारे मिलकर सारे शरीर में क्रिया कर रहे हैं । यहां पर जीवात्मा और पिंड मन दोनों का निवास है । कबीर साहब ने बग 'शब्द' जीवात्मा के लिए और भँवरा शब्द पिंडी मन के लिए प्रयोग किया है । इस चक्र

को सिद्ध करने से नीचे के पांचों चक्र स्वयं सध जाते हैं और उनके सब अधिष्ठाता मय अपनी शक्तियों के सिद्ध हो जाते हैं । तरह तरह की सिद्धियाँ प्रकट होती है किन्तु आत्मा को सच्ची शांति नहीं प्राप्त होती । जो इन सिद्धियों में फंस जाता है वह फिर नीचे को आता है । इस स्थान पर जरा सा ऊपर एक और स्थान है जिसको शिव-नेत्र या तीसरा तिल भी कहते हैं । सुफ़ीयों में इस स्थान का नाम 'नुक्तए सुवैदा' है । यह ब्रह्मांडी मन का स्थान है । जब मन तम से हटकर सत पर आ जाता है तो वह अति शुद्ध हो जाता है और वह फिर यह जीवात्मा को ऊपर के मंडलों में ले जाने में सहायक होता है । यही इसी ब्रह्मांडी मन (जिसको निज मन भी कहते हैं) की प्रधानता है । संतों की परमार्थ इसी स्थान से आरंभ होता है, जबकि योगी लोग इससे नीचे ही खत्म कर देते हैं । सूफी संतों का कथन है -(भावार्थ -- हमारी शुरुआत वहां से होती है जो औरों का (योगियों का) अंतिम लक्ष्य है) । सूफ़ी इससे आगे कहते हैं कि - "आखिरे मा जेबे तमन्ना तिहोस्ता" हमारा आखिरी स्थान वह है जहां तमन्नाओं की जेब खाली हो जाती है अर्थात जहां कोई इच्छा शेष नहीं रहती । यह (Desireless) इच्छाओं से रहित हो जाना है और यही राजी-ब-रजा (ईश्वर की इच्छा के अनुकूल रहना-- यथा लाभ संतोष) ।

कड़ी नं० - ९ -- कँवलन भेद किया निर्वारा,
यह सब रचन पिंड मंझारा ।
सत्संग कर सतगुरु सिर धारा
कह सतनाम उचारा है ॥

कबीर साहब कहते हैं कि अब तक जिस रचना का वर्णन किया गया वह रचना मनुष्य शरीर में है, जिसे पिंड की कहते हैं । योगीजन इसी स्थान तक पहुँच पाते हैं । इससे ऊपर के स्थान उन्हें नहीं मालूम । यहाँ से संतों का मत आरंभ होता है और ऊपर के स्थानों की चढ़ाई शुरू होती है । कबीर साहब कहते हैं कि बिना सतगुरु धारण किये और बिना उसका सत्संग किये सतनाम की (जो सच्चे मालिक का नाम है) प्राप्ति नहीं होती । संतों का मार्ग हीं सच्चा मार्ग है जिसका भेद सिवाय संतों के और कोई नहीं जानता । बिना उसकी शरण लिए इस मार्ग पर चलना असंभव हैं । नीचे के छह चक्रों को मुसलमान सूफी 'लताईफे सत्ता' कहते हैं । संसार का अनगिनत भाग और अनगिनत संप्रदाय यहीं तक रह गए ।

कड़ी नं० - १० -- आँख कान मुख बंद कराओ,
अनहद झींगा शब्द सुनाओ ।
दोनों तिल एक तार मिलाओ,
तब देखो गुलजारा है ॥

अब कबीर साहब संतों के अभ्यास की विधि बताते हैं । पहले आंख कान और मुंह बंद करो । इसका मतलब यह नहीं कि कान और आँख में ऊँगली लगा लो या मुंह पर हाथ रखकर उसे बंद लो बल्कि इसका यह मतलब है कि इंद्रियों की जो वृत्ति बहिर्मुखी हो गई है उस पर रोक लगाकर उसे अंतर की ओर मोड़ दो । आँख से बाहर का कुछ न दिखे, कानों से बाहरी शब्द सुनाई न दे और मुंह कोई बात न करें यानि इन की Attention (धार) अंदर की तरफ जुड़ जाए और ऊपर जिस शिव नेत्र या तीसरे तिल का वर्णन आया है उस स्थान पर अपनी सूरत की धार को जमा दो । ऐसा करने से तीसरा तिल सिद्ध हो जाता है अर्थात तीसरी आंख (जिसे शिवनेत्र भी कहते हैं) खुल जाती है और आंतरिक प्रकाश दिखाई देने लगता है । हमारी बाहरी आँखें स्थूल तत्व की बनी है और जब तक सूर्य, चंद्रमा, तारे, दीपक इत्यादि बाहरी प्रकाश का सहारा न हो वो तब तक वे काम नहीं करती तीसरा तिल या शिवनेत्र स्वयं प्रकाशमान है, उसे किसी दूसरे के सहायता की आवश्यकता नहीं है । इस स्थान पर अनहद शब्द ऐसा सुनाई देता है जैसे झींगुर के बोलने की आवाज आ रही हो या सीटी बज रही हो । इस स्थान की बनावट Δ त्रिकोण जैसी हैं । दोनों भौहों के त्रिकोण के नीचे दाएं बाएं कोण समझो और शीर्षकोण उस स्थान को समझिये जिसे तीसरा तिल कहते हैं । दोनों तिलों को एक तार पर मिलाने से आशय यह है कि बाहरी दोनों आंखों की सूरत को अंदर की तीसरी आँख पर मिला दो और जब वह नेत्र खुल जाएगा तब गुलजार अर्थात प्रकाश दिखाई देगा ।

कड़ी नं० - ११ -- चंद सूर एकै घर लाओ,
सुषमन सेती ध्यान लगाओ ।
त्रिबेनी के संध[1] समाओ,
भोर उतर चल पारा है ॥

तीसरे तिल से जब ऊपर को चलते हैं तो ब्रह्मांड में प्रवेश होता है जिसे तारा-मंडल भी कहते हैं और जिसमें अनेको सूर्य चंद्रमा है । इस तारा मंडल को भी पार कर के ऊपर जाना है । इस स्थान पर एक अत्यंत सूक्ष्म नाड़ी है । इस पर ध्यान लगाकर सूरत को ऊपर चढ़ाना है ।

इस स्थान को मुक्ति द्वार कहते हैं । यह इतना बारीक होता है जैसे बारीक सुई का छेद या राई का दसवां भाग । मनुष्य का मन इतना मोटा होता है जैसे हाथी । अब इस हाथी को सुई के नकुए में होकर निकालना है, तब जीव मुक्ति का अधिकारी बने । कबीर साहब कहते हैं :---

कबीर मुक्ति दुआरा सकुरा राई दसवें भाई
मन तौ में गलु होइ रह्यौ सिकसों किउ कै जाई

फिर वे इसका उपाय भी बताते हैं

कबीर ऐसा सतगुरु जो मिलै, तुठा करे पसाउ ।
मुक्ति दुआरा मोकला सहजे आवउ जाउ ॥

यदि भक्त को पूर्ण सतगुरु मिल जाए और उसकी कृपा हो जाए तो मनुष्य इस मुक्ति द्वार से पार हो जाता है । इस स्थान को बिना सदगुरु की सहायता से कोई पार नहीं कर सकता है ।

इसके आगे तीन रास्ते हैं जिसको कबीर साहब ने त्रिवेणी कहा है । संतों की सच्ची त्रिवेणी यही है । प्रयागराज में जो त्रिवेणी है, वह इसका रूपक है । गंगा सीधी जा रही है, एक ओर से जमुना इसमें मिलती है और दूसरी ओर से सरस्वती । जो कोई गंगा का सहारा लेकर सीधा चला जाएगा वह सिंधु में समा जाएगा यानी ईश्वर में मिल जाएगा । संतो का कथन है कि बाएँ रास्ते से योगी जाते है जहां पर रिद्धि सिद्धि का आवेग है । इसमें फंसकर कोई भी आगे नहीं पहुँच पाता क्योंकि वह काल का रास्ता है । जो रास्ता दाहिने हाथ को है उसमें बड़े बड़े विशाल देश है । संतों का रास्ता बीच का रास्ता है जो सीधा जाता है । इसको नहीं छोड़ना चाहिए ।

कड़ी नं० - १२ -- घंटा संख सुनो धुन दोई,
सहस कंवल दल जगमग होई ।
ता मध्य करता निरखो सोई,
बंकनाल धस पारा है ॥

अब कबीर साहब सातवें चक्र का वर्णन करते हैं जिसका नाम सहस्र-दल-कँवल है । इस स्थान पर बहुत तेज प्रकाश है, मानो एक हजार बत्तियों की ज्योति जल रही है । इस कँवल की एक हजार पंखड़ियाँ प्रकाश फैला रही हैं और नीचे के तीन लोको को (शिवलोक, विष्णु लोक, और ब्रह्म लोक) सत्ता दे रही है । यहां पर दस प्रकार के राग हो रहे हैं । इस स्थान का शब्द बहुत आकर्षक है और उसकी आवाज घंटा और शंख से मिलती जुलती है । इसी ध्वनि को पकड़कर अभ्यासी नीचे के चक्करों से निकलकर इस स्थान तक पहुंचते हैं ।

इस स्थान का स्वामी त्रिलोकी नाथ यानी तीनों लोको का नाथ है जिसे 'निरंजन' भी कहते हैं । सूरत उसकी ज्योति का दर्शन करके आनंदित हो जाती है । प्राणायाम के अभ्यासियों का यह अंतिम स्थान है क्योंकि प्राण चिदाकाश के आगे नहीं जाते । इसलिए उनको आगे के स्थानों की खबर नहीं होती । यह बड़ा विशाल देश है । संतों का कथन है कि यदि इसका वर्णन किया जाए तो हजारों किताबें भर जाएं । यहां ज्योति निरंजन के दर्शन करने के बाद संत आगे का रास्ता बताते हैं । सहस्रदल कंवल के बाद त्रिकुटी का स्थान आता है । इसके बीच का मार्ग अत्यंत सूक्ष्म है और यह एक बहुत महीन नाली में होकर है जो टेढ़ी है और जिसका नाम संतों का बंक-नाल रखा है । इसी स्थान के लिए कहा गया है कि हजरत मोहम्मद सफेद घोड़े पर सवार होकर आसमान पर गए उन्होंने चाँद के दो टुकड़े कर दिए । सफेद घोड़ा प्रकाश रूप है जिसका सहारा लेकर चिदाकाश में जाकर बंक नाल को पार किया, उसी का यह रूपक है । भगवान राम ने शिव के धनुष को बीच से तोड़ कर सीता को ब्याहा । यह भी बंक-नाल का रूपक है । धनुष की शकल बंक नाल जैसी होती है । धनुष तोड़ना यानी बंक नाल को पार कर लेना है । सीता को ब्याहना यानी ब्रह्मांडीय मन को, शक्ति को, अपने वश में कर लेना है ।

डॉक्टरी मत से दोनों भौहों के बीच की भीतरी भाग में एक अर्थ गोलाकार नारी होती है जो आंखों के दोनों भीतरी भागों को ऊपर की ओर मस्तिष्क में जोड़ती है । यह प्रकाशित होती है । इसको ऑप्टिक्स नर्व कहते हैं । यदि यह अपनी जगह से हिल जाती है या इसमें कोई रुकावट आ जाती है तो कुछ दिखाई नहीं देता । संतों ने संभवतः इसी का नाम बंक नाल रखा है । बंक माने टेढ़ी और नाल माने नाड़ी । प्रकाशित चन्द्रमा अर्ध गोलाकार रूप में बंक नाल

का रूपक है, और शिवजी का रत्नाभायुक्त धनुष भी अर्ध गोलाकार होने के कारण बंक नाल का रूपक है ।

कड़ी नं० - १३ -- डाँकनी साँकनी बहु किलकारे,
जम किंकर धर्म दूत हंकारे ।
सत् नाम सुन भागे सारे,
जब सतगुरु नाम ऊंचारा है ॥

नीचे के तीन लोक जिनका वर्णन उपर आया है उनका स्वामी काल है l मुसलमानों में उसे शैतान कहते हैं l उसी ने आत्मा को इन तीनों लोकों में ऐसा कैद कर रखा है जैसे कोई किले में बंद हो । जब आत्मा को अपने असली मालिक परमात्मा की सुधि आती है और वह मन तथा इन्द्रियों के बंधन को तोड़ती हुई अपने स्वामी परमेश्वर की ओर चलती है और इन तीनों लोकों को छोड़कर अपने मालिक के धाम दयाल-देश में जाना चाहती हैं तब काल उसे रोकता है । वह सब तरह से उसे डरा धमका कर, फुसलाकर, लालच देकर और तरह तरह के प्रपंच रच कर आत्मा को आगे नहीं जाने देता । इसी बात का वर्णन कबीर साहब ने यहाँ किया है कि आत्मा जब सहस्रदल कँवल से त्रिकुटी को जाती है जो नीचे से आठवां चक्र है तो रास्ते में विरोधी शक्तियां अनेकों बाधाएं उत्पन्न करती हैं । कहीं ऐसी सुन्दर स्त्रियां मिलती है जो मनुष्य को फुसलाती है । कहीं भूत पिशाच और डरावनी दृश्य उसे भयभीत करते हैं आदि आदि । किन्तु यदि अभ्यासी ने 'सतनाम; को (जो सच्चे मालिक का नाम है) दृढता से पकड़ रखा है और सतगुरु उसके सहायक हैं तो यह सारी बाधाए क्षण मात्र में दूर हो जाती हैं । सतगुरु तो किसी आकर्षण की ओर देखने भी नहीं देता नाम लिए जाओ और सतगुरु का सहारा लेकर अपने लक्ष्य की ओर दृढता पूर्वक बढ़ते जाओ ।

भगवान बुद्ध जब बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए थे और उन्होंने अठारह दिन से न कुछ खाया न था न कुछ पिया था और यह दृढ संकल्प ले रखा था कि जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं होगा तब तक न मैं कुछ खाऊंगा न पीऊंगा, चाहे प्राण क्यों न छूट जाए, उस समय भी ऐसी ही विरोधी शक्तियां उनके सामने आई थी । आँधी तूफान आए, बड़ी मूसलाधार वर्षा हुई, भूत पिशाचों ने आकर डराया, अनेकों सुंदरियों ने अत्यंत आकर्षक ढंग से उन्हें चारों ओर से घेर

का नृत्य करते हुए मोहित करना चाहा, अनेकों प्रकार की रिद्धियाँ-सिद्धियाँ सामने हाथ जोड कर खड़ी हो गई किन्तु सिद्धार्थ विचलित नहीं हुए । अन्य भक्तों का ऐसा ही वर्णन अनेकों धार्मिक पुस्तकों में मिलता है ।

संतों ने इसको अपने अनोखे ढंग से समझाया है । वे कहते हैं कि परमपिता परमेश्वर मालिक है और उसकी शक्ति अर्थात् 'माँ' इस सृष्टि का संचालन कर रही है । वह देखती है कि कौन सा पुत्र वास्तव में अपने पिता का सच्चा प्रेमी और केवल उस 'एक' को छोड़कर और कुछ नहीं चाहता है । इसलिए वह परीक्षा लेती है और साधक को कसौटी पर कसती है कि वास्तव में इसको मालिक से प्यार है या यह किसी प्रलोभन में फंस सकता है अथवा किसी भय के कारण मालिक से विमुख हो सकता है या नहीं । जब साधक कसौटी पर खरा उतरता है यानि सिवाय अपने पिता सच्चे मालिक के और किसी को नहीं चाहता तब माँ उसकी सहायता करती है और रास्ते से हट जाती है । साधक के सांसारिक काम स्वयं 'मां' की मदद से पूरे हो जाते हैं, उसे इस तरफ की चिंता नहीं करनी पड़ती और वह परमपिता परमात्मा की ओर तेजी से बढ़ता जाता है ।

कड़ी नं० - १४ -- गगन मंडल बिच ऊर्धमुख कुइया,
गुरु मुख साघू भर भर पिया ।
निगुरु प्यास मरें बिन क्रिया,
जाके हिये अंधियारा है ॥

त्रिकुटी के वर्णन कबीर साहब ने बहुत गुढ शब्दों में किया है । इस स्थान को उन्होंने ऐसे कहा है कि गगन मंडल में एक ऐसी कुइया है जिसका मुंह उल्टा है । इसका आशय यह है कि जो अभ्यासी गुरुमुख है और जो गुरु का सहारा लेकर इस स्थान तक पहुंच गया उसकी चाल अब सांसारिक भोग पदार्थों की तरफ नहीं रहती बल्कि उर्द्धमुख यानी उलट कर ऊपर की ओर हो जाती है । कुइया में जल का एक स्रोत होता है जिसमें से पानी निकल निकल कर कुइया में भरता रहता है । इसी प्रकार त्रिकुटी के स्थान पर ईश्वरीय आनंद का ऐसा स्रोत है जिसका आनंद वे ही भाग्यशाली पुरुष लेते हैं जो गुरुमुख हैं । जिन्होंने कोई गुरु धारण नहीं किया है वे इस ईश्वरीय आनंद के लिए तरसते रहते हैं और उनका हृदय अज्ञान के अंधकार से भरा रहता

है । संतों का कहना है कि जो त्रिकुटी के स्थान पर पहुंच गया वह इस भव सागर में लौटकर नहीं आता बल्कि शरीर छूट जाने पर भी उसकी आत्मा वहीं से तरक्की करती है ।

कड़ी नं० - १५ -- त्रिकुटी महल में विद्या सारा,
घनहर गरजें बजे नगारा ।
लाल वर्ण सूरज उजियारा
चतुर कंवल मंझार शब्द ओंकारा हैं ॥

सहस्रदल कँवल से ऊपर का चक्र त्रिकुटी कहलाता है जो सारी विद्याओं का भंडार है । इस स्थान को चार दल का कँवल भी कहते हैं । यहाँ पर और चक्रों की तरह प्रकाश तथा शब्द दोनों ही हो रहे हैं । यहाँ लाल रंग का प्रकाश हो रहा है जैसे प्रभात का निकलता हुआ सूर्य रक्त की तरह लाल होता है । माथे पर जो रोली का गोल टीका लगाते हैं वो इसी प्रकार का द्योतक है । कोई-कोई साधु त्रिशूल की तरह तीन टीके लगाते हैं, जिनमें बीच हिस्सा लाल होता है । तीन टीकों का अभिप्राय होता है त्रिकुटी और बीच के स्थान का लाल टिका अर्थात उस स्थान का रक्त वर्ण प्रकाश । यहाँ पर जो ध्वनी हो रही है वह ऐसी है, जैसे मृदंग की मीठी मीठी गूंज या बादल की हल्की मीठी मीठी गरज जिसमें से ' ॐ ' शब्द की निर्मल ध्वनी उठ रही है । संतों का कथन है कि यहां तक कि सृष्टि प्रलय में नष्ट हो जाती है । जो आत्मा इस स्थान को पार कर जाती वे उगते हुए सूर्य की तरह आगे बढ़ती जाती है ।

कड़ी नं० - १६ -- साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा,
नौ दरवाजे प्रगट चीन्हा ।
दसवां खोल जाये जिन दीन्हा,
जहां कुफल रहा मारा है ॥

कबीर साहब कहते हैं कि वही सच्चा साधु है जो अभ्यास करते करते नीचे के चक्रों को पार करता हुआ इस त्रिकुटी के स्थान तक पहुंच गया । इस स्थान तक पहुंचना बहुत कठिन है । इसकी उपमा उस किले से दी है जिस तक पहुँचने के लिए नौ दरवाजे पार करने पड़ते हों और किले के दरवाजे पर ताला लगा हुआ हो । संतों की इस घाट मार्ग में आत्मा जब नौ दरवाजों को पार कर लेती है तब त्रिकुटी के पार पहुंचती है जिसे दशम द्वार कहते हैं । इस

स्थान को संतों ने ब्रह्म की चोटी कहा है यानी यहां से पारब्रह्म में प्रवेश होता है । जो साधु त्रिकुटी को पार कर गया उसी की साधना पूरी है और वही पूर्ण साधु कहलाने योग्य है ।

संतों का कहना है कि उस कुफ़ल (ताले) को खोलने का भेद केवल किसी भेदी संत (वक्त के पूरे गुरु) को ही मालूम होता है । जिस पर वह अति कृपालु होता है उसी को अपनी शक्ति से इस ताले को खोलकर भीतर के दर्शन करा देता है । सूफियों में ऐसे दर्शन को 'कश्फ़' कहते हैं, यानी गुरु अपनी खैंच-शक्ति शिष्य के प्रति प्रयोग में लाता है किन्तु चूंकि शिष्य का आचरण अभी उतने ऊंचे दर्जे का नहीं होता है कि वह उस स्थान पर टिक सके, अत: वह फिर नीचे आ जाता है । जब वह स्वयं मेहनत करके, गुरु कृपा का सहारा लेकर, भेद जान कर, उस ताले को खोलता है, तब उसकी स्थिति वहां स्थायी होने लगती है । इस अभ्यास (युक्ति) को सूफी भाषा में 'कस्ब' कहा गया है ।

कड़ी नं० - १७ -- आगे सेत सुन्न हैं भाई भाई,
मान सरोवर पैठी अन्हाई ।
हंसन मिल हंसा होई जाई,
मिलै जो अमी अहारा है ॥

नीचे से नौवें चक्र अर्थात 'सुन्न' के स्थान से पहले एक स्थान और आता है जिसका नाम है 'सेत सुन्न' या 'अमृतसर' है । कबीर साहब कहते हैं कि इस स्थान पर एक विशालसरोवर है जिसको अमृतसर भी कहते हैं । मानसरोवर झील पर हंस निवास करते हैं जो मोती चुगते हैं और जिन की यह विशेषता है कि यदि उन्हें दूध पिलाया जाए जिसमें पानी मिला हुआ हो तो दूध में से दूध तो पी लेते हैं और पानी को छोड़ देते हैं । यह तो इस देश का हाल है । फिर जिस मानसरोवर का उल्लेख कबीर साहब ने किया है वह मनुष्य के अंदर नौवें चक्र से पहले है । जब अभ्यासी चढाई करते करते हंस और परमहंस की गति को प्राप्त कर लेता है तब वह इस स्थान तक पहुंचने का अधिकारी होता है तब ही वह सार को ग्रहण कर लेता है और असार को छोड़ देता है । यही दूध का दूध और पानी का पानी करना है । इस स्थान पर पहुंचकर अभ्यासी उन आत्माओं के साथ मिल जाता है जो हंस और परमहंस गति को प्राप्त हो चुकी है और अमरत्व को प्राप्त होता है । इस स्थान पर आकर आत्मा निर्मल हो जाती है और मायावी

मंडलों से आजाद हो जाती है । अब इसको सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया है कि इसका भी कोई परमात्मा है और इसे उससे मिलने की तीव्र इच्छा पैदा हो जाती है ।

कड़ी नं० - १८ -- किंगरी सारंग बजै सितारा,
अक्षर ब्रह्म सुन्न दरबारा ।
द्वादस भानु हंस उजियारा,
षट दल कंवल मंझार शब्द ररंकारा है ॥

इस स्थान पर जो शब्द हो रहा है उसकी आवाज ऐसी रसीली और आकर्षक है जैसे किंगरी और सारंगी की होती है । यहां का शब्द ररंकार है । यह छह दल का कँवल है और यहां पर आत्मा का प्रकाश इतना तेज हो जाता है जैसे बारह सूर्य एक साथ प्रकाशित हो रहे हों । आंतरिक चक्रों में यह चक्र नीचे से नौंवां है जो ब्रह्मांड के अंतर्गत आता है और जिसे 'सुन्न' का स्थान कहते हैं । मुसलमान सुफियों में इसे 'खला' कहते हैं । जिसका अर्थ उन्होंने 'अदम' या 'नेस्त' किया है और जिसका साधारण अर्थ है 'न होना' । किंतु इससे यह मतलब नहीं कि वहां कोई अस्तित्व ही नहीं है या यह स्थान खाली है । उस शून्य में भी अस्तित्व है किन्तु वहां ज्ञान का अभाव है जिसके कारण 'शून्य' शब्द का अर्थ नहीं हो सकता । आत्मा इस कदर प्रकाशित होते हुए भी इस सुन्न के स्थान से अपने आप ऊपर नहीं जा सकती । जब तक सतगुरु सहायता न करें तब तक यह स्थान पार नहीं हो पाता । दीपक के नीचे अँधेरा होता है ।

कड़ी नं० - १९ -- महा सुन्न सिन्ध विषमी घाटी,
बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी ।
ब्याधर सिंह सर्प बहु काटी,
तहं सहज अचिंत पसारा है॥

आंतरिक चक्रों में 'महासुन्न' का स्थान नीचे से दसवां है । यह एक ऐसा मंडल है जहां पर निर्मल शुद्ध माया का राज्य है । यहां की रचना इतनी सुन्दर और मनमोहक है कि मनुष्य की सूरत उसको छोड़ कर ऊपर नहीं जाना चाहती । कबीर साहब ने इसको अलंकार द्वारा समझाया है । वे कहते हैं कि जैसे अजगर, शेर, बाघ इत्यादि हिंसक पशु अपने खाने की वस्तुओं को

अपनी ओर खींचते है उसी प्रकार महासुन्न मंडल की चेतन रचना सूरत को अपनी ओर खींचती है । उसको ऊपर का रास्ता नहीं मिल पाता है । जब तक कि शिष्य पूरी तरह से गुरु में लय न हो जाए और उससे मिलकर शब्द स्वरूप न हो जाए तब तक यह यह चक्र पार नहीं हो पाता है । यहां पर गुरु का देह स्वरूप नहीं होता बल्कि शब्द स्वरूप होता है और वही शब्द स्वरूप शिष्य को इस स्थान से ऊपर जाने का रास्ता दिखाता है । बहुत से ऋषि मुनि को जो पार ब्रह्म तक पहुंच गए हैं उनको यहां से आगे का रास्ता बताने वाला कोई नहीं मिला क्योंकि इसका भेद केवल संतों के पास ही है । इसलिए वे वहीं पर रुके पड़े हैं और वहां के सुख को अनुभव कर रहे हैं लेकिन आगे नहीं जा सकते । जिनको जिस स्थान तक का गुरु मिला है वे वही तक रह गए हैं । इसलिए कहा है कि पूरा सतगुरु धारण करो जो सच खंड तक ले जाए ।

कड़ी नं० - २० -- अष्टदल कँवल पार ब्रह्म भाई,
दहिने द्वादश अचिंत रहाई ।
बायें दस दल सहज समाई,
यों कंवलन निरवारा है ॥

इस महासुन्न के चक्र पर आठ दल का कँवल है । इसके बाईं ओर सहज द्वीप है जिसमें दस दल का कंवल है और दाहिनी ओर अचिंत द्वीप है जिसमें बारह दल का कँवल है । कबीर साहब कहते हैं कि पार ब्रह्म के इस स्थान के कँवलों की यह रचना है ।

कड़ी नं० - २१ -- पांच ब्रह्म पांचों अंड बीनो,
पांच ब्रह्म नि:अक्षरचीन्हो ।
चार मुकाम गुप्त तहं कीन्हो,
जा मध्य बंदीवान पुरुष दरबारा है । २१ । कर नैनो०

'महासुन्न' से जब ऊपर को चलते हैं और भंवर गुफा में प्रवेश करते हैं तो बीच में बड़े बड़े महान देश अर्थात गोलाकार खंड है । हमारा यह मृत्यु लोक जिसे हम विश्व कह कर पुकारते हैं उसकी तुलना में इस प्रकार है जैसे समुद्र की एक बूंद या शरीर का एक रोम । इन पांचों मंडलों का एक-एक ब्रह्म है । इसके अतिरिक्त यहां पर चार स्थान ऐसे भी मिलते हैं

जिनको संतों ने गुप्त रखा है और जिनका भेद नहीं बताया है । किसी रहस्य के कारण ही वे इसको वर्णन में नहीं लाये । जो अभ्यासी चढ़ाई करके इन स्थान को पार करेंगे । उन्हें स्वयं यह रहस्य प्रकट हो जाएगा । जो आत्माएं इन स्थानों में रहती हैं उन्हें बंदीवान कहा गया है । प्रभु की उनके लिए यही आज्ञा है कि वे यहीं निवास करें । यद्यपि इस मंडल में उन्हें कोई कष्ट नहीं है परन्तु वे इससे ऊपर नहीं जा सकती । मृत्युलोक से जिन आत्माओं को संत अपने साथ ऊपर ले जाते हैं उनसे यह बंदीवान प्रार्थना करते हैं कि संतों से निवेदन करो कि हमें भी ऊपर ले जाएं । संतों ने सर्व सामर्थ्य है, यदि वे चाहें तो उनको साथ ले जा सकते हैं ।

कड़ी नं० - २२ -- दो पर्वत की सन्धि निहारो,
भंवर गुफा वहँ संत पुकारो ।
हंसा करते केल अपारो,
तहाँ गुरन दरबारा है ॥

आंतरिक चक्रों में नीचे से ग्यारहवां चक्र 'भँवर-गुफा' कहलाता है । यह सच खंड में प्रवेश होने का दरवाजा है । संतो ने इसे 'सोहं' का देश कहा है । मुसलमान सूफ़ियों ने इसका नाम 'मुकामें-अनाहु' रखा है । 'सोहं' का अर्थ है कि 'जो तू है वही मैं हूँ' । बूंद सागर को देख कर कहती है कि मै भी इसी का अंश हूँ, सागर भी पानी और मैं भी पानी । परन्तु वह सागर है और मैं बूंद हूँ । इसमें प्रवेश आसानी से नहीं होता । यह महामाया का स्थान है और प्रकृति माता यहां भी इम्तेहान लेती हैं । आत्मा यानि अंश अपने अंशी परमात्मा से मिलकर एक हो जाना चाहती है किन्तु यदि थोड़ी सी भी कमी है यानि आत्मा पर अगर कोई भी सूक्ष्म आवरण शेष है तो इस स्थान को पार नहीं कर पाती । यहाँ भी सतगुरु की ही दया और सहायता शिष्य को इस स्थान से पार कराती है । इस स्थान पर दो तरफ ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं और इसके बीच में होकर रास्ता है । जो आत्माएं बिल्कुल निर्लेप हो चुकी हैं वे यहां ऐसी स्वतंत्रता से विचरती है जैसे पक्षियों में श्रेष्ठ हंस । यह सतगुरु का दरबार है ।

कड़ी नं० - २३ -- सहस अठासी दीप रचाए,
हीरे पन्ने लाल जुड़ाए ।
मुरली बसत अखंड सदाये,
तहं सोहं झनकारा है ॥

कबीर साहब इस मंडल की बड़ी सुंदरता से वर्णन करते हैं । वे कहते हैं कि इस मंडल में अट्ठासी हजार दीप जिसमें भक्तजन निवास करते हैं । जो आत्माएं इस स्थान तक आ गई, कबीर साहब ने उसकी उपमा हीरे पन्ने से दी है । इस मृत्युलोक में हीरे और पन्नों से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है, अतः संतों ने इस देश तथा उसमें निवास करने वाली आत्माओं की उपमा को हीरे पन्नों से दी है । जो स्वयं प्रकाशित होते हैं । यहां पर आत्मा स्वयं प्रकाशित होती है और अत्यंत निर्मल तथा निर्लेप होकर अपने आप को परमात्मा का रूप समझने लगती है । यहां का शब्द 'सोहं' है यानि जो तू है वही मैं हूँ । सूफी संतों में 'अनाहू' शब्द का अर्थ भी यही है कि जो तू है वही मैं हूँ । मौलाना रूम फारस के बहुत बड़े संत हुए हैं और उनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'मसनवी' में इस स्थान का रूपक उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से बांधा है ।

---

*ब-शनौ अज नै चूं हकायत मी कुनद ।
वाज़ जुदाई हा शिकायत मी कुनद ॥
कज़ नेस्ताँ ता मरा बबुरीदा अंद ।
अज नफीरम मरदो जन नालीदा अंद ॥
सीना ख्वाहम शरह-२ अज फ़िराक ।
ता विगोयम शरह दर्दे इश्तियाक ॥

भावार्थ - नै अर्थात बांसुरी अपने विरह का वर्णन करती है और विलाप करके कहती है कि जब से मुझे बांसों के वन से मुझे काटा गया है मैं बराबर उलाहना दे रही हूँ । मेरे आवाज़ से समस्त स्त्री पुरुष व्याकुल हैं । मैं चाहती हूँ की विरह के दुःख से मेरा हृदय टुक टुक हो जाए जिससे अपने प्रीतम से मिलने के लिए उसमें जो पीड़ा हो रही है उसको सविस्तार कह सकूँ । आशय यह है कि आदि से आत्मा जब से परमात्मा से बिछुड़ी है उस पर क्या क्या गुजरी है, समस्त स्त्री और पुरुष जो दुखी होकर चिल्ला रहे हैं वह उसी के दर्द की कहानी है वह चाहती है कि उसके उपर के आवरण टुक-टुक हो जाएँ ताकि निर्मल सुरत निकल कर उसके विरह का दुःख अपने प्रीतम के सामने प्रकट कर सकें ।

आत्मा को उन्होंने मुरली का रूप दिया है । वे कहते हैं कि आत्मा रूपी बाँसुरी अपने प्रीतम के विरह में विलाप करती हैं कि जब से मुझे बाँसों के वन से काटा गया है तब से मैं निरंतर रो रही हूँ । इसका आशय यह है कि आत्मा जब से सतलोक (सूफियों का मुकामेहक) से बिछुड़ी और इस संसार में आ फंसी तब से वह निरंतर अपने प्रीतम से मिलने की इच्छुक है और विलाप करती रहती हैं । इस स्थान पर मुरली की अखंड ध्वनी सदा होती रहती है ।

कड़ी नं० - २४ -- सोहं हद्द तजी जब भाई,
सत्त लोक की हद्द पुनि आई ।
उठत सुगंध महा अधिकाई,
जा को वार न पारा है ॥

भँवर गुफा को पार करके सूरत सतलोक में प्रवेश पा जाती है । इस स्थान को सचखंड भी कहते हैं । जिसका नाम सूफियों ने 'मुकामेहक' रखा है । यह नीचे से बारहवां चक्र है । इस स्थान की सुंदरता और महिमा का वर्णन करने के लिए कोई उदाहरण नहीं मिलता । कबीर साहब केवल इतना कहते हैं कि वहां इतनी सुगंध है, जिसका कोई वार पार नहीं है । अर्थात जैसे सुगंध चित् को प्रसन्न करती है, वैसी ही प्रसन्नता उस स्थान पर प्राप्त होती है यद्यपि यह कोई अब उदाहरण नहीं है । यह स्थान अत्यन्त शांत, आनंददायक और प्रेम से परिपूर्ण है जिसकी तुलना के लिए इस भू-मंडल में कोई उदाहरण नहीं है ।

कड़ी नं० - २५ -- षोडस भानु हंस के रूपा,
बीना सत धुन बजै अनुपा ।
हंसा करत चँवर सिर भूपा,
सत्त - पुरुष दरबारा है ॥

इस सच्च्खंड में आत्मा का इतना तेज़ प्रकाश हो रहा है जैसे सोलह सूर्य एक साथ उदय हुए हों यहाँ ऐसा मधुर शब्द हो रहा है जैसे बिना बज रही हो और इतनी आकर्षक ध्वनी से बज रही हो जिसकी कोई उपमा नही है । जो जो संत इस स्थान से हो कर गुजरे उन्होंने भी इसी बात की पुष्टि की है :---

रहंत जनम हरि दरस लीणा,
बाजंत नानक सबद बीणा ॥
(गुरु नानक देव)
अखंड मंडल निरंकार महि अनहद - बेनु बजावउगो ।
बैरागी रामहि गावहु गो । (नामदेव जी)

यह स्थान सच्चे मालिक सत्पुरुष का दरबार है । इसी को 'सतलोक' और 'सतधाम' कहा जाता है । यहां न जन्म है, न मरण है, न दुख है, न सुख है । इस स्थान पर आत्मा परमात्मा से मिल कर एक हो जाती है किन्तु संतों का कहना है कि मिल कर एक होते हुए भी उसका निर्लेप अस्तित्व अलग बना रहता है । कबीर साहब ने संभवतः 'हंसा' शब्द है इसलिए प्रयोग किया है कि यहां पर निर्लेप आत्माएं अपने भूप यानी स्वामी सच्चे मालिक की सेवा में रहती है और यही सिर पर चँवर करना है । जो आत्माएं इस स्थान से उतरकर पृथ्वी लोक में प्राणियों के उद्धार के लिए आती है वही सच्चे संत हैं, वही मुक्त पुरुष हैं और वही औरों को मुक्ति दिला सकते हैं ।

कड़ी नं० - २६ -- कोटिन भानु उदय जो होई,
ऐते ही पुनि चन्द्र लखोई ।
पुरुष रोम सम एक न होई,
ऐसा पुरुष दीदारा है ॥

इस सतलोक (सतखंड) में सत्पुरुष सच्चे मालिक के दर्शन होते हैं । कबीर जी कहते हैं कि यदि करोड़ों सूर्यों और चन्द्रमाओं का प्रकाश एक साथ जगमगाने लगे तब भी उस सत्पुरुष दयाल के एक रोम में बराबर नहीं होता । ऐसे सतपुरुष का दर्शन इस स्थान पर होता है । जिन अधिकारी जीवों पर वक्त के पूरे संत सदगुरू की विशेष कृपा होती है और जो उनकी मुराद होते हैं उन्हें वे अपनी ताकत से वहबी तौर पर सतपुरुष के दर्शन करा देते हैं । और वह इसी स्थान पर कराते हैं जिसका ऊपर वर्णन किया गया है । इसके बाद धीरे धीरे अपने अभ्यास द्वारा कसबी तौर पर वह यहां पहुंच जाता है, दूसरों को रास्ता दिखाता है और स्वयं भी ऊपर को चाल चलता रहता है ।

कड़ी नं० - २७ -- आगे अलख लोक है भाई,
अलख पुरुष की तहं ठकुराई ।
अरबन सूर रोम सम नाहिं,
ऐसा अलख निहारा है ॥

सतखंड से ऊपर का चक्र अलख कहलाता है जिसे 'अलखलोक' या 'अलख पुरुष का धाम' भी कहते है जिसे 'अखलोक' भी कहते हैं । इस स्थान पर पहुँच कर सब संत महात्मा मौन हो गये । जब अभ्यासी सतपुरुष के में देश में पहुंचता है तो वह अपनी शक्ति देकर ऊपर भेजता है । इस 'अलखलोक' में इतना तेज प्रकाश है कि यदि अरबों सूर्य और अरबों चन्द्रमा एक साथ प्रकाशित हो तब भी उसके एक रोम की तुलना नहीं की जा सकती ।

कड़ी नं० - २८ -- ता पर अगम महल एक साजा,
अगम पुरुष ताहि का राजा ।
खरगन सूर रोम इक लाजा,
ऐसा अगम अपारा है ॥

अलख से ऊपर अगम पुरुष का स्थान आता है जिसके विषय में संतों ने कहा है कि यदि खरबों सूर्य और खरबों चंद्रमा एक साथ उदय हो तो भी उनका प्रकाश अगम पुरुष के एक रोम के बराबर नहीं हो सकता ।

कड़ी नं० - २९ -- ता पर अकह लोक है भाई
पुरुष अनामी त हाँ रहाई ।
जो पहुंचे जानेगा वाही
कहन सुनन से न्यारा है ॥

अलख लोक से आगे अनामी पुरुष का धाम है जिसे 'अकहलोक' भी कहते हैं । इस स्थान पर पहुँच कर सब संत महात्मा मौन हो गये । जिसने भी कहा यही कहा, कि इसका कोई वर्णन नहीं हो सकता, यह अकह है, इसको अनामी (No Name) भी कहते है । यह गूंगे का गुड़ है ।

जो स्वयं इस स्थान तक पहुँच जाए वही इसका अनुभव कर सकता है । यहाँ न एक है, न दो है, न तीन , न इसका आदि है और न अंत । यह सब रचना मनुष्य शरीर के अंदर मौजूद है और मनुष्य जन्म में ही किसी वक्त के पुरे संत सतगुरु की शरण लेकर इसकी कमाई की जा सकती है । संत सतगुरु की आवश्यकता इसलिए है कि वे स्वयं कमाई किये हुए होते है और अंतर के भेद तथा मंजिलों से परिचित होते है । उन्हें हीं भेदी गुरु भी कहते है और जब तक भेद बताने वाला न हो, कमाई नहीं हो सकती है । आजकल की सांसारिक विद्या जो कोलेजों में पढाई जाती है वह भी बिना अध्यापक या प्रोफेसर के पढाये हुए प्राप्त नहीं होती । तो फिर यह तो ब्रह्म विद्या है, यह बिना गुरु के कैसे प्राप्त हो सकती है ? इसलिए संत सतगुरु की ऐसी पवित्र महिमा है जिससे पुस्तकें भरी पड़ी हैं । परमेश्वर को पहले पहल कौन देखता है ? उसे दिखाने वाले सतगुरु की स्थूल देह के हीं प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं और उन्हीं के बताये हुए मार्ग पर चलकर और उन्हीं का अवलम्बन कर परमात्मा के दर्शन होते है । इसलिए संतों ने गुरु की महिमा गाई है और गुरु को परमेश्वर से बढ़कर माना है ।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पायें ।
बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविन्द दियो मिलाये ॥

❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋

मारग में तारण मिले, संत राम दोई ।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋

कड़ी नं० - ३० -- काया भेद किया निर्वारा,
यह सब रचना पिंड मंझारा ।
मावा अवगति जाल पसारा,
सो कारीगर भारा है ॥

कबीर साहब कहते हैं कि मनुष्य शरीर में जितनी रचना है उस सब का भेद हमने बता दिया । इस सब रचना का यानी संसार का जो हमें आंखों से दिख रहा है, जिसे 'मायाजाल'

कहते हैं, उसको रचने वाला काल-पुरुष है । कोई उसे माया कहता है, कोई शैतान और कोई प्रकृति (Nature) ।

मुसलमानों और ईसाइयों में एक कहावत है कि खुदा ने जब सारी सृष्टि बना ली तब मिट्टी का एक पुतला बनाकर उसमें जान फूंक दी और उसमें सारे गुण अंश रूप में उसमें प्रविष्ट कर दिए और शैतान से कहा कि इसको सिजदा (प्रमाण) करो । शैतान को यह अच्छा नहीं लगा कि मैं इस मिट्टी के पुतले को सिजदा करूँ । उसने अर्ज की कि ऐ खुदाबंद करीम ! मैं सिर्फ आप ही को सिजदा कर सकता हूँ, किसी और को नहीं । इस पर खुदा नाराज हो गए और शैतान को अपने दरबार से निकाल दिया । शैतान ने तब से यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं इस पुतले यानी इंसान के कारण ही खुदा के दरबार से निकाला गया हूँ इसीलिए मैं इसे हमेशा बहकाता रहूँगा । खुदाबन्द करीम ने फरमाया कि जब तक एक-एक इंसान की मख़फ़रत (मोक्ष) नहीं होगी तब तक तेरी मख़फ़रत (मोक्ष) भी नहीं होगी । तभी से शैतान मनुष्य को बहकाता रहता है और उसकी मोक्ष में बाधाएं उत्पन्न करता है । किन्तु जब मनुष्य उसके बहकावे में नहीं आता और उसके चंगुल से निकल जाता है, तब वह खुश होता है और उसकी सहायता करता है और यह सोचता है कि अब मेरी मोक्ष भी निकट होती जाती है ।

कड़ी नं० - ३१ -- आदि माया किन्हीं चतुराई,
झूँठी बाजी पिंड दिखाई ।
अवगति रचना रची अंड माहीं,
ता का प्रतिबिम्ब डारा ॥

प्रभु की आदि माया अर्थात काल ने बड़ी चतुराई पूर्वक मनुष्य के शरीर में ऐसी रचना रची जिसमें ब्रह्मांड के छः चक्रों का प्रतिबिम्ब निचे के चक्रों पर डाला है । जिन चक्रों पर वह प्रतिबिम्ब डाला है उनमें से छः चक्र पिंड शरीर यानी स्थूल शरीर के हैं और छह चक्र अंड के हैं (जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं) । काल का अभिप्राय यह है कि कोई जीव इस माया जाल से निकल कर सत खंड में न पहुंच जाए । इसलिए वह जीव को अनेक प्रकार के प्रलोभनों और आकर्षणों द्वारा इस संसार चक्र में फंसाए रखता है ।

कड़ी नं० - ३१ -- शब्द विहंगम चाल हमारी,
कहे कबीर सतगुरु दई तारी ।
खुले कपाट शब्द झनकारी,
पिंड अंड के पार सो देस हमारा है ॥

इस कड़ी की व्याख्या करने से पहले यह बता देना आवश्यक है कि संत मत में आंतरिक अभ्यास द्वारा सूरत को नीचे के चक्रों में चढ़ाई करते हुए ऊपर की ओर ले जाते हैं । पिंड के छह चक्रों को पार करने में बहुत अधिक समय लगता है क्योंकि मनुष्य संसार के बंधनों में इस बुरी तरह जकड़ा रहता है कि वे उसे तीव्रता से परमार्थ पथ पर अग्रसर होने नहीं देते । सूरत को ऊपर चढ़ाता है और जहाँ कोई झकोला आया फिर वो नीचे को आ जाती है । फिर वह प्रयत्न करता है लेकिन फिर गिर पड़ता है । इसी तरह यह चढ़ने और गिरने का क्रम चलता रहता है । एक न एक दिन वह सतगुरु की कृपा और सहायता से निचले छः चक्रों को पार कर जाता है । इसी धीमी गति के कारण इस मार्ग को पिपीलिका मार्ग कहते हैं । पिपीलिका चींटी को कहते हैं जो बहुत धीरे धीरे चलती है, ऊपर चढ़ती और गिर जाती है, किंतु वह हिम्मत नहीं हारती । अभ्यासी को भी यही टेक बांधनी चाहिए कि जब-जब गिरे तो हिम्मत न हारें, सतगुरु का सहारा ले और आगे बढ़ता जाए । रास्ता न छोड़ें । किसी ने कहा है -

मरेंगे यारों तलब में हक की,
जो नाम तालिब लिखा चुके हैं ।

(तलब = जिज्ञासा, चाह ; हक़ = परमेश्वर ; तालीब = जिज्ञासु, चाहने वाला)

जब इससे ऊपर अभ्यासी की सूरत निकल जाती है तो उसकी चाल मकड़ी की तरह हो जाती है । जैसे मकड़ी मुंह से तार निकालकर छत से धरती पर उत्तरी, अपना शिकार करके फिर उसी मार्ग से छत पर चली गई, यही गति पिंड के छह चक्रों के बाद अभ्यासी की हो जाती है । सांसारिक बंधन से उसे इतना नहीं जकड़ते और वह अपने कार्य मे स्वतंत्र होता है । इसके आगे की चढ़ाई मीन मार्ग कहलाती है । जैसे मछली पानी की धार के सहारे उल्टी सैकड़ों मील तक चली जाती है क्योंकि पानी से उसका प्रेम है, इसी तरह सूरत मालिक के प्रेम की धार को पकड़ कर ऊपर तेजी से चढ़ी चली जाती है । इसके बाद अंतिम और सर्वोत्तम चाल

पक्षियों की चाल कहलाती है । जिसे विहंगम चाल कहते हैं । संतों की बैठक सतखंड या दयाल देश में होती हैं और उन्हें यह ताकत होती है कि जैसे पक्षी पहाड़ की चोटी से उड़कर धरती पर आ जाता है और फिर उड़कर वापिस पहाड़ की चोटी पर पहुंच जाता है उसी तरह संतजन अपने स्थान दयाल देश से उतर कर संसार में व्यवहार करने के लिए आ जाते हैं और पुनः वही चले जाते हैं । गुदा चक्र से लेकर आज्ञा चक्र तक चींटी की चाल है, उससे ऊपर भृकुटी तक मकड़ी की चाल है । दसवें द्वार तक मछली मीन की चाल है और उससे ऊपर विहंग की चाल है ।

कबीर साहब आदि संत हुए हैं । वे कहते हैं कि हमारी चाल विहंगम चाल है और शब्द हमारा मार्ग है । हमारा देश पिंड और अंड के पार है जिसकी ताली सतगुरु से प्राप्त होती है । और कपाट यानी दरवाजा खुल जाने पर उस दयाल देश में प्रवेश मिलता है, जिसमें शब्द की झनकार हो रही है और जिसका वर्णन ऊपर किया गया है ।

(४) चेतावनी

जितने संत गुजरे हैं सभी ने कबीर साहब के उपरोक्त घट मार्ग का यही वर्णन किया है । उसमें कोई भी अंतर नहीं है । गुरु नानक देव परमहंस स्वामी रामकृष्ण, संत तुलसी साहब, राय साहिब शालिग्राम जी, दादू जी, मीराबाई, सूफी संतजन तथा अनेको संतों ने इसी मार्ग की महिमा अपनी अपनी रचनाओं में गाई है ।

इस कलियुग में 'नाम' ही आधार है और वह 'नाम' केवल सतगुरु द्वारा ही मिल सकता है । 'नाम' वह है जो सतगुरु दे, चाहे वह 'राम' हो 'ॐ' हो, अल्लाह हो या और कोई नाम । सतगुरु वह नाम देता है जो स्वयं उसका कमाया हुआ हो और जिसके द्वारा उसने स्वयं दयाल देश में स्थित प्राप्त की हो । 'नाम' एक सहारा है जिससे पकड़कर अभ्यासी परमार्थ की चाल चलता है । बिना सहारे और बिना रहबर (मार्गदर्शक) के चाल नहीं चली जा सकती है । अत: गुरु को खोजो । वक्त का पूरा सतगुरु होना चाहिए । गुजरे हुए संत और सदगुरू अपने समय में लोगों को रास्ता दिखाया गए और मंजिल तक पहुंचा गए किन्तु अब वे स्थूल शरीर में मौजूद नहीं है । लुकमान हकीम बहुत बड़े हकीम थे, लेकिन वे अपने समय में थे । यदि अब कोई 'लुकमान' , 'लुकमान' चिल्लाता रहे तो क्या उसकी बीमारी दूर हो जाएगी ? बीमारी दूर

करने के लिए तो कोई जिंदा हकीम ही ढूंढना पड़ेगा । अत: वक्त के पूरे सद्गुरु की खोज करो और जब ईश्वर की कृपा से वह मिल जाए तो अपने भाग्य को सराहो और लग लिपट कर अपना काम बना लो ।

यह मनुष्य चोला बार-बार नहीं मिलता । आत्मा इसी चोले में रहकर परमात्मा की प्राप्ति कर सकती है, किसी दूसरी योनी में रहकर नहीं । समय जा रहा है, यह बहुत अमूल्य है, एक-एक श्वांस जा रहा है, यह फिर हाथ नहीं आएगा ,इसलिए इसको वृथा मत जाने दो । सदगुरु को खीजो, उसकी शरण ग्रहण करो और श्रद्धा और अटूट विश्वास के साथ उसके बताए हुए मार्ग पर चलते चले जाओ ।

गुरुदेव कल्याण करें । श्रीकृष्ण लाल

सागर के मोती

मन के पलटाव पर नजर रखो, मन पलटता रहता है । सब तरफ से अंधे हो जाओ और सहारा एकन परमात्मा का लो । आत्मा एक अकेली है - तुम भी सब लिप्सा त्याग कर अकेले हो जाओ तब आत्म पद मिलेगा ।

पिछले संस्कार जितनी शीघ्रता से कटेंगे और उनको स्वत: अपनी राज़ी से काटने की तीव्रता जितनि आप में होगी, और बढ़ेगी, उतनी जल्दी आपका काम बनेगा । नहीं तो कारण कार्य (Cause, Effect) की दुनिया है, प्रकृति के नियम नहीं बदला करते । हाँ, आप उन नियमों को समझ कर लाभ उठा सकते है । प्रयास करो, लगन के साथ । नॉबिल पढ़ते हुए कैसे चाय को भूल जाते है, नींद को, या आराम को भूल जाते हैं, वैसे हीं प्रभु के नॉबिल का चस्का पैदा करो दिल में ।

यह (ईश्वर का दरबार) दावते आम है । आइये ख़ुशी से नीलामी में बोली लगाइए , बे रोक-टोक । पर जिसे सरफरोशी का दावा हो, अपने आप सर पेश करे । कीमत देनी पड़ेगी, छुपाव कुछ न हो, बुलहविस मत रहो । कुर्बान करो अपने आप को । मौत के वक्त सब कुछ मज़बूरी से छोड़ना होगा, तो अभी से छोड़ा हुआ क्यों न समझ बैठो । काम करो लगन से, नतीजा छोडो प्रभु के हाथ । दुखो से बचने का यही तरीका है ।

शुरू शुरू में प्रीत, प्रेम, मुहब्बत शर्तिया (Condition) होती है । अगर शिष्य की परीक्षा में संत पास हो गये तो संत है , नही तो झूठे, मक्कार, फरेबी कहलाये । संत अपने प्यार से शिष्य को कुछ सिखा देते है । अब संत ने दो रुपये मांग लिए, शिष्य ने कहा - जी हाँ, पहली तारीख को वेतन मिलने पर दूंगा । यह ओछा प्रेम है शिष्य का, क्यों नहीं उधार-सुधार लेकर पेश करे । संत अपने लिए कुछ नहीं मांगता वह तो आपका पैसों में जो अटकाव है वह छुड़ाता है ।

(परम सन्त डा० श्री कृष्ण लाल जी महाराज)